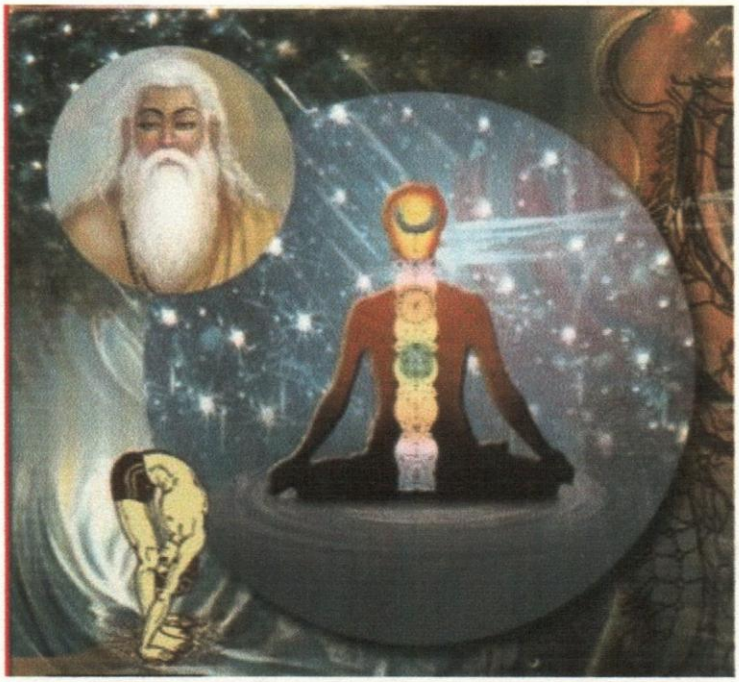

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।

# प्रथम-अध्याय

## शोध-परिचय

# 1.0 प्रस्तावना

शिक्षा का सर्वोच्च लक्ष्य व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करना है अतएव शिक्षा से सम्बन्धित समस्त सिद्धान्त एवं प्रयोग 'व्यक्तित्व विकास' को केन्द्र में रखकर ही संरचित तथा प्रशासित किए जाते हैं अतः व्यक्तित्व का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान का आधारभूत स्तम्भ है अतएव **माध्यमिक शिक्षा आयोग**[1] **(1952–53)** ने शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों में व्यक्तित्व–विकास को स्थान दिया है। **कोठारी शिक्षा आयोग**[2] **(1964–66)** ने शिक्षा के राष्ट्रीय लक्ष्यों में सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के विकास को सम्मिलित करते हुए कहा है कि हमारा विश्वास है कि भारत को विज्ञान तथा आत्मा सम्बन्धी मूल्यों को निकट एवं सङ्गति में लाने की कोशिश करनी चाहिये तथा अन्त में जाकर एक ऐसे समाज के उदय के लिए मार्ग तैयार करना चाहिये जो सम्पूर्ण मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा न कि उसके व्यक्तित्व के किसी खण्ड विशेष की। **राष्ट्रीय शिक्षा नीति**[3] **(1986)** के द्वितीय भाग में शिक्षा की भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा है –

"In our national perception education is essentialty for all. This fundamental to our all round development, material and spiritual"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व का विकास शिक्षा–यात्रा का केन्द्रीय तत्व है तथा यह भौतक के साथ–साथ आध्यात्मिक विकास की भी अपेक्षा करता है अतः एक शिक्षक को व्यक्तित्व सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्तों का ज्ञान होना अपरिहार्य है ताकि वह छात्रों के व्यक्तित्व के समझ सके तथा उनकी न्यूनताओं को दूर कर उनके व्यक्तित्व विकास का प्रयास कर सके।

आज भारत में व्यक्तित्व–शिक्षण का आधार आधुनिक पश्चिमी मनोविज्ञान है। व्यक्तित्व सिद्धान्त की चर्चाओं में फ्रायड, ऑलपोर्ट, युंग इत्यादि ही सुनाई देते हैं जबकि भारतीय दर्शन के ऐसे सैकड़ों ग्रन्थ हैं जिनमें मनोविज्ञान और व्यक्तित्व सम्बन्धी अवधारणाएँ निहित हैं (शर्मा 1985)[4]। पतञ्जलि का योगशास्त्र विशुद्ध मनोविज्ञान का शास्त्र है जिसमें मानव की प्रकृति और व्यक्तित्व का अत्यन्त सूक्ष्म अध्ययन किया गया है जो कि पूर्णतः प्रायोगिक है (शुक्ला 1982)[5] और व्यक्तित्व विकास में सक्षम है। 19वीं शताब्दी के नए पाश्चात्य मनोविज्ञान की तुलना में हजारों वर्ष प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में मन, बुद्धि और चित्त का सूक्ष्म विश्लेषण कर व्यक्तित्व साधना की गई है।

---

1. Government of india, ***Report of the secondary Education commission*** (1952-53), New delhi : Government of india, 1965, p.23
2. भारत सरकार, *शिक्षा आयोग की रिपोर्ट* (1964–66) नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, 1968, पृ.क्र. 24–25
3. Government of india, ***National policy on Education*** (1986), New delhi : M.H.R.D. Department of education, Government of india, 1986, p.3
4. R.P. Sharma (1985) A critical Study of the nature and development of human Personality in ancient Indian thought.- Ph.D Education , Delhi University 1985, Abstract – IV Survey of Reserech in Education.
5. S.C. Shukla (1982). Integertion of yogic phiolsohy and practices in the modern system of Indian Education. Ph.D. kim University. Abstract- III survey of research in education.

**कोठारी शिक्षा आयोग**[6] **(1964–66)** में कहा गया है कि "..... हम इस बात की महत्ता पर भी जोर देना चाहते हैं कि विद्यार्थियों को मौन ध्यान के लिए समूहों में इकट्ठे होने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। **राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005**[7] में भी 'योग' को पाठ्यचर्या के मुख्य अवयव के रूप में जोड़ने की बात कही है तथा योग के प्रशिक्षण को सेवा–पूर्व शिक्षक–प्रशिक्षण में सम्मिलित करने की संस्तुति की गई है। आज पातञ्जल योग दर्शन में उक्त योगासन प्राणायामादि दैनिक जीवन में चिन्ता, तनाव, अवसाद इत्यादि से मुक्ति के साधन के रूप में देश–विदेश में प्रतिष्ठित हो रहे हैं (लेनिथ 2002[8], ब्राउन और ग्रेवर्ग 2005[9], मेहता 2006[10])

निष्कर्षतः दो तथ्य स्पष्ट होते हैं पहला यह कि शिक्षा का चरमोद्देश्य व्यक्तित्व विकास करना है तथा दूसरा यह कि योग इस प्रक्रिया में सहायक है अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जिस पतञ्जलि ने इस योग–विद्या को प्रतिष्ठित किया, उनके सिद्धान्त को शिक्षा–जगत् में व्यक्तित्व मीमांसा के सन्दर्भ में क्यों नहीं पढ़ाया जाता ? पाश्चात्य जगत् में आज भी व्यक्तित्व का कोई ऐसा सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं है जिसके आधार पर सम्पर्ण व्यक्तित्व को वैज्ञानिक ढङ्ग से समझा जा सके अतः इस सम्बन्ध में निरन्तर शोध हो रहे हैं आज मनोविज्ञान के क्षेत्र में पश्चिमी विद्वान वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा मन के परे जाने के प्रयत्न में लगे हैं अर्थात् परा–मनोविज्ञान (Para-psychology) विकसित हो रहा है। अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष (E.S.P.- Extra sensory perception) पर प्रयोग हो रहा है और गर्व का विषय यह है कि पातञ्जल योग शास्त्र सहस्रों वर्ष पहले उसका विवेचन कर चुका है किन्तु दुर्भाग्य है कि उन भारतीय अवधारणाओं को शिक्षक अध्यापन का विषय ही नहीं बनाते पुस्तकालयों में भारतीय मनोविज्ञान व व्यक्तित्व अवधारणा से संबंधित पुस्तकें नगण्य ही हैं साथ ही इस प्रकार के शोध कार्यों का बाहुल्य भी नहीं दिखाई देता।

अतः प्रस्तुत शोध कार्य शिक्षा के सर्वप्रमुख उद्देश्य व्यक्तित्व विकास के सम्बन्ध में पातञ्जलयोगदर्शन में निहित दृष्टिकोण को स्पष्ट कर व्यक्तित्व शिक्षण और अध्ययन हेतु भारतीय आधार स्तम्भों को दृढ़ता प्रदान करने का एक विनम्र सङ्कल्पित प्रयास है।

---

6. भारत सरकार, *शिक्षा आयोग की रिपोर्ट* (1964–66) नई दिल्लीः शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, 1968, पृ.क्र. 23
7. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005,* नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, 2006, पृ.क्र. 64–65
8. S Lenith (2002). A study of the affect of stress on society and how it can be managed through yog.; Yoga As a stress Management Tool, ***Journal of Research Papers.*** 2 (5) (Aug. 2002) 125-135
9. R.P Brown and P.L. Grebarg (2005). Yogic Breathing in the Treatment of Stress Anxiety and Depression. ***The Journal of Alternative and complimentary medicine II*** . (Aug, 2005): 711-717
10. S Mehta (2006) *Effect of some yogic practices on human subject ( physiological & psychological)" Yoga Intervention to Reduce Anxiety.* ***Indian Journal of physiological pharmacology.*** 5 (1) (Jan-march 2006) ; 121-138

## 1.1 व्यक्तित्व क्या है ?

प्राचीन काल से लेकर व्यक्तित्व आज तक शोध का विषय बना हुआ है क्योंकि यह ऐसी जटिल अवधारणा है जिसके अर्थ परिस्थिति व दृष्टिकोण के अनुसार बदलते रहते हैं पाश्चात्य व भारतीय दार्शनिकों ने व्यक्तित्व पर गहन चिन्तन किया है। सर्वप्रथम आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान में प्रचलित व्यक्तित्व सम्बन्धी पाश्चात्य अवधारण का अत्यन्त सङ्क्षेप में विवेचन किया जा रहा है।

### 1.1.1 पाश्चात्य अवधारणा

पश्चिमी जगत् में व्यक्तित्व सम्बन्धी वैज्ञानिक अध्ययन और शोध बहुत प्राचीन नहीं है अपितु बीसवी सदी के आरम्भिक काल से यह प्रकाश में आया किन्तु उसके पहले पाश्चात्य दार्शनिकों ने भी व्यक्तित्व पर विचार किया है। ईसा से पाँच शताब्दी पूर्व यूनान के हिप्पोक्रेट्स ने शरीर में पाए जाने वाले रसों के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया। व्यक्तित्व अध्ययन के क्षेत्र में सर्वप्रथम व्यवस्थित अध्ययन मनोचिकित्साशास्त्रियों द्वारा प्रारम्भ किये गये जिनमें क्रेपलिन, जेनेट, फ्रायड आदि हैं। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में फ्रायड द्वारा अचेतन मन के गूढ़ रहस्यों को प्रकाशित करना एक व्यक्तित्व अध्ययन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण चरण था।[11] लाइबनिट्स एवं शॉपेनहॉवर ने भी अचेतन मन पर विचार किया था पर फ्रायड ने उसे वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। फ्रायड ने इड, इगो तथा सुपरइगो को व्यक्तित्व निर्धारक तत्वों के रूप में विवेचित किया तथा कामशक्ति को मुख्य अभिप्रेरक माना। इन मनोविश्लेषणात्मक उपागम पर आधारित सिद्धान्तों का प्रतिपादन एडलर, युंग, हार्नी, सुलीवान, फ्रोम इत्यादि मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न–भिन्न प्रधान कारकों के आधार पर किया। शेल्डन, क्रेश्मर इत्यादि ने शरीरगठनात्मक उपागम के आधार पर तो इरिक्सन ने जीवन अवधि उपागम के आधार पर व्यक्तित्व का विभाजन किया है। ऑलपोर्ट[12], कैटेल इत्यादि ने व्यक्ति के शीलगुणो के आधार पर व्यक्तित्व की व्याख्या की। व्यक्तित्व की विभिन्न विमाओं को केन्द्र में रखकर आइजेनिक[13], कोस्टा और मैकक्रे आदि ने अपने–अपने व्यक्तित्व सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। मैसलों तथा रोजर्स ने मानवतावादी उपागम अपनाया तथा व्यक्तित्व सिद्धान्त प्रतिपादन में दर्शनशास्त्र व मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का उपयोग किया। केली कर्ट लेविन इत्यादि ने संज्ञानात्मक उपागम को मानते हुए व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण के तरीके के अनुसार व्यक्तित्व व्याख्या की। बैन्डूरा, वाल्टर मिशेल, मार्टिन, सेलिगमेन आदि ने सामाजिक–संज्ञानात्मक कारकों को व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या में महत्व दिया। स्किनर, डोलार्ड एवं मिलर ने सीखे हुए और अनुबन्धित व्यवहारों के आधार पर व्यक्तित्व निर्माण प्रक्रिया को सिद्ध किया।

---

11. (Conscious)" it is the segment of the mind which is concerned with immediate awareness.....Foreconscious is that segment of the mind which is concerned with redily recallable material. ..... unconscious is that segment of the mind which is concerned with which we can nat recall at will". S. Freud, Quoted by j.f. brown, 1940 As cited in – D.N. Shrivastava ***psychology of personality***, Agrwal publication, Agra 2008, P. 227
12. "Personality is the dynamic organization within the- individual of those psychophysical system that determine his unique adjustment to his environment"- G.W. Allport 1937 As cited in - D.N. Shrivastava ***psychology of personality***, Agrwal publication, Agra 2008, P. 4
13. Personality is the more or less stable and anduring organization of a person character, temperament, intellect and physique that determine his unique adjustment to his environment. – H.J. Eysenck 1952, Ibid; p. 5

सामान्य रूप से व्यक्तित्व के सम्बन्ध में इन प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों की अवधारणा को देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य मत में व्यक्तित्व संरचना के तीन प्रमुख आधार है, दैहिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक। व्यक्तित्व के निर्धारकों में जैविक, वातावरण सम्बन्धी, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक सांस्कृतिक कारक अपनी भूमिका निभाते हैं। इसके अनुसार व्यक्तित्व में गत्यात्मकता है यद्यपि इसके प्रेरक कारक भिन्न कहे गए हैं। प्रत्येक व्यक्तित्व प्रतिमान अभूतपूर्व है तथा इसका मुख्य उद्देश्य वातावरण के प्रति समायोजन करना है। इस मत में प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व सापेक्ष रूप से स्थायी होता है अर्थात् किसी एक व्यक्ति के शीलगुण या विशेषताएँ अन्य की तुलना में स्थायी होते हैं।

इस प्रकार पाश्चात्य मनौवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व सिद्धान्त के क्षेत्र में विस्तृत एवं विविध प्रकार से अध्ययन किए हैं जिनका उल्लेख प्रायः शिक्षा मनोविज्ञान की समस्त पुस्तकों में प्राप्त होता है अतः इन सबका वर्णन यहाँ करना आवश्यक नहीं है साथ ही प्रस्तुत शोधकार्य व्यक्तित्व की भारतीय अवधारणाओं के परिप्रेक्ष्य में किया जा रहा है अतः अग्रिम बिन्दु में उनका विवेचन अपेक्षाकृत विस्तार से किया जा रहा है।

## 1.1.2 भारतीय अवधारणा

मानवीय व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण विषय भारतीय एवं पश्चात्य मनोविज्ञान के सम्प्रदायों में भिन्न दृष्टिकोण से विवेचित हुआ है अतः प्रसङ्गानुकुल होने के कारण भारतीय दृष्टि कोण में निहित व्यक्तित्व अवधारणा को स्पष्ट करना समीचीन होगा।

ज्ञानान्वेषण की परम्परा भारत में सर्वदा विद्यमान रही है। सहसों वर्षो तक विश्व को सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक नेतृत्व देने वाले भारत में शून्य भी आविष्कृत हुआ, मूर्धन्य मनीषियों ने पदार्थ–रचना का विश्लेषण किया, काल–गणना की गई, तर्क, व्याकरण, आयुर्वेदादि विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति की तथा आत्मविद्या के गूढ रहस्यों को भी अनावृत्त किया। एक सुदीर्घ यात्रा के पश्चात् जीवन के आधारभूत सत्यों के आधार पर भारतीय दर्शन का विकास हुआ। दर्शन और मनोविज्ञान अभिन्न विषय हैं तथा सामान्यजन का चिन्तन है कि मनोविज्ञान पश्चिम की सङ्कल्पना है किन्तु भारतीय दर्शन में मनोवैज्ञानिक तत्वों का अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन प्राप्त होता है। आधुनिक मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है तथा भारतीय दर्शन में भी मानव–व्यवहार को सूक्ष्म अध्ययन के उपरान्त आचार मीमांसा प्रस्तुत की गई है (शर्मा 1985)। भारत में मनोविज्ञान वेदों उपनिषदों तथा अन्य दार्शनिक विचारधाराओं से सम्बन्धित रहा है, तथा जीवन के हर पक्ष से घनिष्ठ रूप से सम्पृक्त है (माथुर 1989)। पुरूषार्थ का विवेचन भी इसी आधार पर हुआ है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के मूल में भी मनुष्य की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ हैं तथा ये भी व्यक्तित्व को प्रभावित करती है।

भारतीय मनोविज्ञान पश्चिम के समान केवल मन एवं व्यवहार के अध्ययन तक सीमित न रहकर 'आत्मतत्व' तक पहुँचा है तथा आनुवांशिकता और पर्यावरण से पहले पूर्वजन्म और गर्भ में प्राप्त संस्कारों को महत्व देता है इन संस्कारों पर व्यक्ति की बुद्धि, विशिष्ट योग्यताएँ, अभिरूचियाँ आदि निर्भर करती हैं। गर्भाधान के समय माता–पिता के विचार व भाव सन्तति के व्यक्तित्व की आधार भूमि तैयार कर देते हैं। अर्थात भारतीय व्यक्तित्व चिन्तन का आधार भी बहुत गहरा है तथा शीर्ष भी बहुत उन्नत है। पाश्चात्य मनोविज्ञान इस भारतीय आधार और शीर्ष के बीच की कुछ इकाईयों मे ही सीमित हो जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान 'व्यक्तित्व' को केवल शरीर और मन की क्रियाओं व व्यवहार का योग मानता है जबकि भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति की आत्मा, परमात्मा का अंश है तथा मूलतः व्यक्ति अपने अन्तस में एक आध्यात्मिक सता लेकर जन्म लेता है और सुसमायोजित व्यक्तित्व का विकास तभी सम्भव है जब व्यक्ति अपने आध्यात्मिक स्वरूप से परिचित हो। अतः भारतीय दर्शन में आत्मानुभूति पर बल दिया गया है।[14]

वैदिक काल से लेकर भारतीय आस्तिक–नास्तिक दर्शनों में व्यक्तित्व किस प्रकार विवेचित किया गया है इस का संक्षिप्त विवरण अग्रिम बिन्दु में प्रस्तुत किया जा रहा है।

### 1.1.2.1 उपनिषदों में वर्णित व्यक्तित्व संरचना –

व्यक्तित्व सिद्धान्त के आदि अंश वैदिक साहित्य में प्राप्य है जहाँ देह, प्राण, मन, मस्तिष्क, हृदय एवं आत्मा से युक्त जटिल संरचना व्यक्तित्व है। उपनिषदों के अनुसार मानवीय व्यक्तित्व का केन्द्रीय तत्त्व आत्मा है। आत्मा स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरों के साथ संयुक्त होने पर सुख दुःख का भोक्ता हो जाता है और इसकी वास्तविक सत्ता आवृत्त हो जाती है।

भारतीय प्राचीन ऋषियों ने जीवात्मा के आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व को आवृत्त करने वाले तथा उसका निर्माण करने वाले आवरणों को पांच कोशो में विभक्त किया है –

---

14- 'आत्मा वा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः।
आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन, मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विज्ञातं भवति।।' ( वृह.उप.2/4/8)
उद्धृत – बलदेव उपाध्याय, *भारतीय दर्शन*, वाराणसीः शारदा मन्दिर, 2001, पृ.क्र. 14

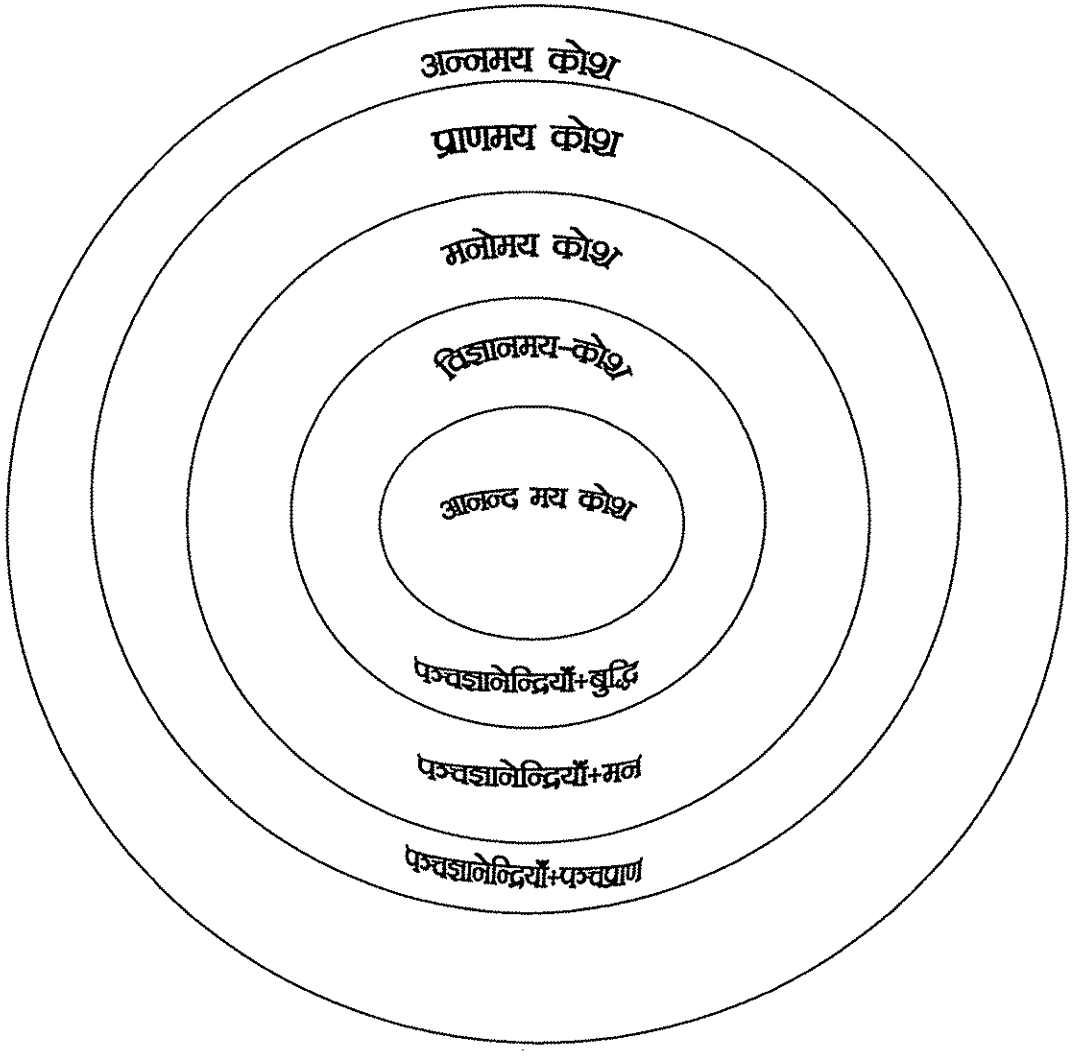


- **अन्नमय कोश**[15]– व्यक्तित्व का प्रथम और बाह्यतम स्वरूप अन्नमय है अर्थात् प्रत्यक्ष होने वाला यह शरीर या बाह्य व्यक्तित्व। इसे जैव–दैहिक आवरण (Bio-physical- sheath) भी कह सकते हैं।

  अन्न से बने रज–वीर्य से यह उत्पन्न होता है और बढ़ता है। देहाध्यास के कारण व्यक्ति इसे ही सम्पूर्ण व्यक्तित्व मानकर इसका पोषण करता रहा है यद्यपि भारतीय मत में इसका महत्व भी स्वीकार किया गया है क्योंकि यही साधन है सूक्ति है "शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम्" अतः शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति चेतना भी व्यक्तित्व विकास हेतु आवश्यक है।

---

15. "अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते याः काश्च पृथिवीं श्रिताः।".....इत्यादि, तैत्तिरीयोपनिषद्, हरिकृष्णदास गोयन्दका (व्याख्याकार), *ईशादिनौ उपनिषद्*, गोरखपुरः गीताप्रेस, सं. 2038, पृष्ठ क्र. 308,

- **प्राणमय–कोश**[16]– पञ्च कर्मेन्द्रियों (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ) तथा पञ्च वायु (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) से मिलकर प्राणमय–कोश बनता हैं। यह वह कोष है जो जीवन को बनाए रखता है। इसे जैव आवरण (Vital Air sheath) भी कहते हैं। यह किया शक्ति प्रधान कोश है। यह स्थूल देह का जीवन तथा कार्य करने हेतु प्राप्त होने वाला बल है। यदि कर्मेन्द्रियों तथा वायु पर नियन्त्रण न हो तो शारीरिक स्वास्थ्य असन्तुलित हो सकता है तथा प्राणायामादि के द्वारा इस कोश का विकास कर लिया जाय तो बहुविध रोगों से मुक्ति प्राप्त हो सकती है जो कि व्यक्तित्व विकास का दूसरा स्तर है।

- **मनोमय–कोश**[17]– पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ (श्रोत्र, नेत्र, नासिका, जिह्वा और त्वचा) और मन का सम्मिलत रूप ही मनोमय कोश कहा जाता है। विज्ञान की दृष्टि से इसे हम मानसिक आवरण (Mental Sheath) भी कह सकते हैं। यह इच्छाशक्ति प्रधान कोष है।

  यह भौतिक शरीर की विभिन्न इन्द्रियों के अनुभवों एवं संवेदनाओं को ग्रहण करता है एवं सभी कोशों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करता है। सङ्कल्प, विकल्प, कामनाएँ एवं भावों का उदय इसी कोश में होता है अतः इसका विकास अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा मानसिक विकारों का जन्म होता है।

- **विज्ञानमय कोश**[18] – पञ्चज्ञानेन्द्रियों से युक्त बुद्धि ही विज्ञानमय कोश कहलाती है इसे बौद्धिक आवरण (Intellectual sheath) भी कह सकते है। यह ज्ञानशक्ति सम्पन्न कोष है। बुद्धि निश्चयात्मिका वृत्ति है तथा मन के कार्यों की समीक्षा करती है।

  अज्ञान की औषधि विवेक ज्ञान ही है तथा बुद्धि का विकास होने पर ही आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करना सम्भव है अतः इस कोश का विकास व्यक्तित्व विकास हेतु अत्यधिक आवश्यक है।

- **आनन्दमय कोश**[19]– इसी सूक्ष्म कोष में आत्मा का निवास होता है। यहाँ वासनाएँ तथा त्रिगुण सुप्तावस्था में होते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति का विवेक इस प्रकार विकसित होता है कि प्रेयस् तथा श्रेयस् का भेद सहज ही स्पष्ट हो जाता है।

  समस्त प्रकार के अज्ञानों से मुक्ति ही शिक्षा का लक्ष्य है और यही व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है श्रुति भी कहती है –*"विद्ययाऽमृतमश्नुते"*[20] इत्यादि।

---

16. ".....आत्मा प्राणमयः।.....प्राणो हि भूतानामायुः।" –तथैव– पृष्ठ क्र. 310
17. मनो ब्रह्मेति व्यजानात् ..... मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। –तथैव– पृष्ठ क्र. 337
18. "विज्ञानं यज्ञं तनुते। कर्माणि तनुतेऽपि च। विज्ञानं देवाः सर्वे ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते।" –तथैव– पृष्ठ क्र. 338
19. "आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।" –तथैव– पृष्ठ क्र. 339
20. *ईशावास्योपनिषद्*, ईशादिनौउपनिषद्, गीता प्रेस, गौरखपुर, सं. 2038, पृ.क्र. 33

उपर्युक्त पञ्चकोश विवेक ही व्यक्तित्व को संरचित करता है। अन्नमय कोश अर्थात् भोजन की प्रकृति पर निर्भर होगा कि व्यक्ति में वात,पित्त या कफ किसकी प्रधानता होगी या वह सात्विक ,राजसी या तामसी ,कौन सी प्रवृत्ति की ओर व्यक्तित्व को अग्रेषित करेगा। ये पॉचों कोश वस्तुतः स्थूल से सूक्ष्म तत्व की साधना है और योग, ध्यान, प्राणायाम आदि कियाओं के माध्यम से अन्नमय कोश से आनन्दमय कोश तक की यात्रा सम्भव है। जो व्यक्ति जिस सोपान पर है, उसका व्यक्तित्व भी उसी प्रकार का भाव–प्रधान ,बुद्धि प्रधान, विवेक प्रधान इत्यादि होगा।

### 1.1.2.2 श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित व्यक्तित्व की अवधारणा

गीता में त्रिगुणों के आधार पर त्रिविध व्यक्तित्व की व्याख्या की गई है–

- सत्वगुणप्रधान सात्विक व्यक्तित्व–
  *"मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।*
  *सिद्धयसिद्धयोर्निर्विकारः कर्ता सात्विक उच्यते।।18.26।।"*[21]

  सङ्गरहित,अहङ्कारी वचन न बोलने वाला,धैर्य और उत्साह से युक्त तथा कार्य के सिद्ध होने और न होने में हर्ष–शोकादि विकारों से रहित है वह सात्विक कर्ता कहा जाता है।

- रजोगुण प्रधान राजसी व्यक्तित्व–
  *"रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।*
  *हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।। 18.27।।"*[22]

  आसक्ति से युक्त,कर्मों के फल को चाहने वाला और लोभी है तथा दूसरों को कष्ट देने के स्वभाववाला अशुद्धाचारी और हर्ष–शोक से लिप्त है वह राजस कहा गया है।

- तमोगुण प्रधान तामसी व्यक्तित्व –
  *"अयुक्तः प्राकृतः सतब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः।*
  *विषादी दीर्घसूत्री च कर्त्ता तामस उच्यते ।।18.28।।*[23]

अयुक्त, शिक्षा से रहित, घमण्डी, धूर्त्त, दूसरों की जीविका नाश करने वाला, शोक करने वाला, आलसी और दीर्घसूत्री तामसी कर्त्ता कहा गया है।

---

21- *श्रीमद्भगवद्गीता*, गोरखपुरः गीताप्रेस, सं. 2059, पृ.क्र. 380
22- –तथैव– पृ.क्र. 380
23- –तथैव– पृ.क्र. 381

### स्थितप्रज्ञ अर्थात् स्थिर बुद्धि पुरूष–

गीता के द्वितीय अध्याय में परिपक्व व्यक्ति अर्थात् स्थिर बुद्धि पुरूष का वर्णन है।[24] जिसका सारांश इस प्रकार है– "स्थितप्रज्ञ सम्पूर्ण कामनाओं,राग–द्वेष,भय,क्रोधादि संवेगों से मुक्त होता है। वह अपनी इन्द्रियों को विषयों से उसी प्रकार हटा लेता है जैसे कछुआ अपने अङ्गों को समेटलेता है। शुभाशुभ, दुःख–सुख में समान रहता है। स्थितप्रज्ञ पुरूष में कोई भी भोग विकार उत्पन्न नहीं करता । अत्यन्त शान्तचित से वह आत्मानन्द की अनुभूति करता है।

इस प्रकार गीता में श्रीकृष्णोक्त ये वचन सर्वाङ्गीण विकसित परिपक्व व्यक्तित्व के लक्षण हैं।

## 1.1.2.3 साङ्ख्य–दर्शन में व्यक्तित्व–अवधारणा

महर्षि कपिल रचित साङ्ख्य दर्शन के अनुसार यह व्यक्तित्व पच्चीस तत्वों के संयोग से बना है–

प्रकृति, बुद्धि, अहङ्कार, पञ्च तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध), पञ्च ज्ञानेन्द्रियॉ (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण), पञ्च कर्मेन्द्रियॉ (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ), मन, पञ्च महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश) तथा, पुरूष या आत्मा।

इस व्यक्तित्व में त्रिगुणों (सत्व,रज और तम) के न्यूनाधिक्य से व्यक्तित्व भेद हो जाता है। यथा सत्वगुण लाघव,प्रकाशयुक्त तथा प्रीत्यात्मक है। तमोगुण प्रतिबन्धक, भारी, विषादात्मक तथा मोहात्मक है। तथा रजोगुण उत्तेजक, चञ्चल तथा दुःखात्मक है।

इस प्रकार साङ्ख्यानुसार जिसमें जिस गुण का आधिक्य होगा, उसका व्यक्तित्व वैसा ही होगा । इस मत में तत्वज्ञान ही त्रिविध दुःखों से मुक्ति प्रदान करता है। और वह तत्वज्ञानी पूर्ण विकसित व्यक्तित्व होता है।

## 1.1.2.4 अद्वैत–वेदान्त–दर्शन एवं व्यक्तित्व

अद्वैत वेदान्त वस्तुतः उपनिषदों का ही सार है। इस मत में व्यक्तित्व सूक्ष्म व स्थूल शरीर का योग है। यह सूक्ष्म शरीर सत्रह अवयवों से मिलकर बनता है– पञ्चज्ञानेन्द्रियॉ (श्रोत्र,त्वक्,चक्षु,जिह्वा,तथा घ्राण), पञ्च कर्मेन्द्रियॉ (वाक्,पाणि,पाद,पायु और उपस्थ), मन तथा पञ्चवायु (प्राण,अपान,व्यान,उदान और समान) एवं बुद्धि।

---

24- "स्थितप्रज्ञस्य का भाषा.....ब्रहनिर्वाणमृच्छति।।" 2.54–72 *श्रीमद्भगवद्गीता,* गोरखपुरः गीताप्रेस, सं. 2059, पृ.क्र. 54–65

स्थूल शरीर पञ्चमहाभूतों (आकाश,वायु,तेज,जल तथा पृथिवी) के पञ्चीकरण[25] से निर्मित होता है।

वेदान्तदर्शन में चेतना के 4 स्तर बताए गए हैं–

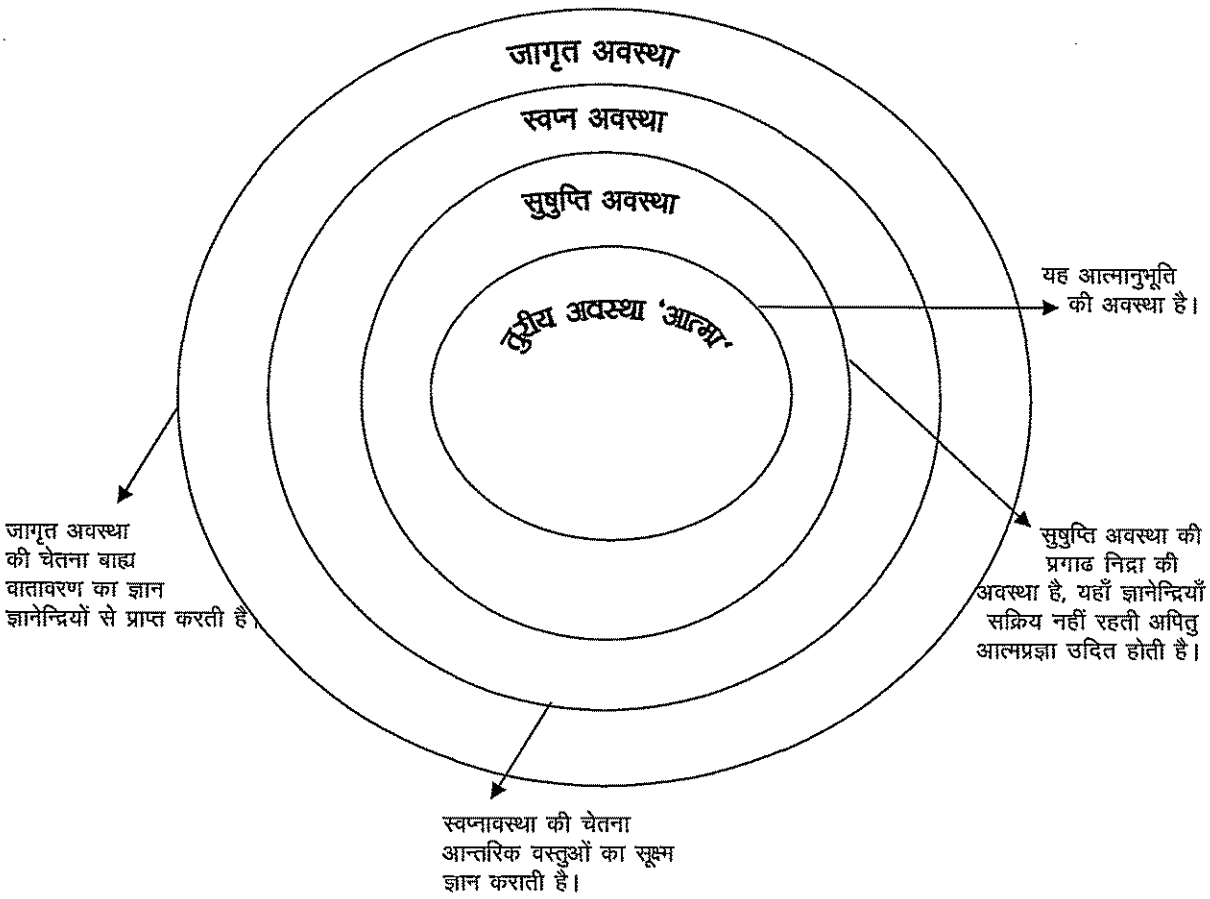


तथा वेदान्त भी चेतना के विकास को ही व्यक्तित्व का विकास कहा है। जब यह चेतना चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है तब प्राणी में अद्वैत दृष्टि आविर्भूत होती है यही आत्मानुभूति या मोक्ष की अवस्था है और व्यक्तित्व के विकास का चूडान्त उत्कर्ष है।

वेदान्तोक्त अधिकारी के लक्षण में कही गयी 'साधनचतुष्टयसम्पन्नता' को व्यक्तित्व विकास का मार्ग कहा जा सकता है। ये साधन चतुष्टय हैं–

- नित्यानित्यवस्तुविवेक अर्थात् शाश्वत व विनाशशील वस्तुओं का विवेक होना।
- इहामुत्रार्थफलभोगविराग अर्थात् लौकिक व अलौकिक फल व भोगों से वैराग्य होना।
- शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान इन षट् सम्पत्ति से युक्त होना।
- मुमुक्षा अर्थात् मोक्ष या आत्मानुभूति की इच्छा होना।

---

25- "द्विधा विधाय चैकेकं चतुर्धा प्रथमं पुनः।
स्वस्वेतर द्वितीयांशैर्योजनात्पञ्च ते ।।"
सदानन्द योगीन्द्र *वेदान्तसार*, मेरठ, साहित्य भण्डार, 2000 पृ.क्र. 103

### 1.1.2.5 जैन दर्शन में सम्पूर्ण व्यक्तित्व की सङ्कल्पना

जैन दर्शन में 'त्रिरत्न' से सम्पन्न व्यक्ति को श्रेष्ठ कहा है। ये त्रिरत्न हैं–

- सम्यक् दर्शन अर्थात् यथार्थ ज्ञान के प्रति श्रद्धा होना।
- सम्यक् ज्ञान अर्थात् असन्दिग्ध तथा दोष रहित ज्ञान प्राप्त करना।
- सम्यक् चरित्र अर्थात् अहितकर कार्यों का वर्जन तथा हितकारी कार्यों का आचरण करना।

रत्नत्रय के साथ–साथ 'पञ्चमहाव्रत' का पालन करने वाला व्यक्तित्व ही श्रेष्ठता के मार्ग पर अग्रेसर रहता है। ये व्रत इस प्रकार हैं–

- अहिंसा अर्थात् मन,वचन तथा कर्म से जीवों की हिंसा का वर्जन।
- सत्य अर्थात् मिथ्या वचन का परित्याग।
- अस्तेय अर्थात् चौरवृति का वर्जन।
- ब्रह्मचर्य अर्थात् समस्त वासनाओं का परित्याग।
- अपरिग्रह अर्थात् विषयासक्ति और अतिसङ्ग्रह का परित्याग।

इस प्रकार जैन दर्शन में रत्नत्रय और पञ्चमहाव्रत का पालन करने वाले परिपक्व व्यक्तित्व में भी जो अतिशय सम्पन्न है ऐसे 'पञ्च परमेष्टि' की व्याख्या की गई है, ये हैं– अर्हत्, सिद्ध,आचार्य,उपाध्याय और साधु।

### 1.1.2.6 बौद्ध–दर्शन में व्यक्तित्व की सङ्कल्पना

बौद्ध–दर्शन के प्रसिद्ध साहित्यिक ग्रन्थ 'अभिधम्म–पिटक' में 'आत्म' अर्थात् व्यक्तित्व को शारीरिक अङ्गों,विचारों ,इच्छाओं,स्मृतियों और संवेदनाओं इत्यादि का योग कहा गया है। बुद्ध के अनुसार शरीर की उत्पत्ति, वृद्धि तथा विकास एक अन्तर्निहित वासना या कामना के कारण होता है।

बुद्ध की यह अनुभूति थी कि जीवन अन्ततः दुःखमय है अतः उन्होंने चार आर्य सत्यों का प्रतिपादन किया और उनके ज्ञान को ही मोक्ष–प्राप्ति का मार्ग बताया। इस क्रम में उन्होंने पूर्ण या परिपक्व व्यक्तित्व के रूप में 'बोधिसत्व' या 'पूर्णप्रज्ञ' अथवा 'अर्हत्' का स्वरूप बतलाया है।

सांसारिक दृष्टिकोण से अभिधम्म नियमावली मे व्यक्तित्व के अधोलिखित प्रकार कहे गये हैं–[26]

- संवेदी प्रकार का व्यक्तित्व – सुन्दर,नम्र,भद्र,कलात्मक,क्रमबद्ध,कर्तव्यनिष्ठ,स्वच्छ इत्यादि गुणों से युक्त होता है। इनमें कपट,धूर्तता, कामुकता ,हीनता आदि दुर्गुण भी होते है।
- घृणित प्रकार का व्यक्तित्व – हठधर्मी,शुष्क, अव्यवस्थित, कोधी, ईर्ष्यालु,कृतध्न और तुच्छ होते हैं।
- वञ्चक प्रकार का व्यक्तित्व – आलसी,विचलित,अडियल, उदासीन,निद्राप्रिय, सौन्दर्य बोधरहित, अव्यवस्थित होते ।
- स्वस्थ प्रकार का व्यक्तित्व – स्नेहमय,दयालु,परोपकारी,प्रसन्न इत्यादि कुशल कारकों से युक्त होता है।

---

26. उद्धृत – डी.एन. श्रीवास्तव, *व्यक्तित्व का मनोविज्ञान*', आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन, 2008, पृ.क्र. 514–517

**आदर्श व्यक्तित्व का स्वरूप –**

बौद्ध दर्शनानुसार जो आर्य सत्यों को जानते हुए अर्थात् दुःख,द्वादशनिदान, दुःख निरोध या निर्वाण तथा दुःखनिरोध मार्ग का ज्ञान प्राप्त करते हुए अष्टाङ्ग मार्ग का आचरण करता है अर्थात् सम्यक् दृष्टि,सम्यक् सङ्कल्प,सम्यक् वाक्, सम्यक, कर्मान्त,सम्यगाजीव,सम्यक्,व्यायाम, सम्यक, स्मृति के अनन्तर सम्यक् समाधि को प्राप्त करता है। समाधि के चार स्तरों को हम उत्तरोत्तर व्यक्तित्व विकास की अवस्था कह सकते हैं–

- प्रथम अवस्था – वितर्क तथा विचार पूर्ण व्यक्तित्व।
- द्वितीय अवस्था – प्रगाढ चिन्तन पूर्ण व्यक्तित्व।
- तृतीय अवस्था – पूर्णप्रज्ञा की अवस्था।

जब पूर्णप्रज्ञत्व की प्राप्ति हो जाती है तब व्यक्ति समस्त दुःखों से निर्वाण प्राप्त कर लेता है। वह 'अर्हत्' अर्थात् परिपक्व व सम्पूर्ण व्यक्तित्व बन जाता है तथा लोक कल्याण के लिए प्रयत्नशील हो जाता है, लोगों के दुःखों को दूर करने में प्रवृत्त हो जाता है। यही 'बोधिसत्व' का आदर्श है जो एक आदर्श और पूर्ण व्यक्तित्व की सङ्कल्पना है।

**1.1.2.7 श्री अरविन्द के मतानुसार 'व्यक्तित्व' की अवधारणा–**

महर्षि अरविन्द ने वस्तुतः वेद, उपनिषद्, गीता और दर्शनों में उक्त व्यक्तित्व अवधारणा को आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया अतः उनके विचारों का उल्लेख करना प्रासङ्गिक होगा।

श्री अरविन्द के अनुसार मानवीय व्यक्तित्व केवल चेतन और अचेतन मन का एक अच्छा अथवा बुरा सङ्गठन नहीं है। उसका अधिक महत्वपूर्ण भाग अतिचेतन है। यह उसकी उच्चतर भावी अवस्थाओं का द्योतक है। मानव का वह विकास – मार्ग जिसे वह तय कर चुका है, उसके अवचेतन को निर्धारित करेगा। यह हमारे भूत के संस्कारों को संङ्गहण होगा और हमारे वर्तमान व्यवहारों को निर्धारित करेगा, परन्तु पूर्णतया सीमित नहीं करेगा क्योंकि उन्नति करने हेतु हमें अपने पुराने संस्कारों को अतिक्रान्त करना होता है और यह हम अपने अतिचेतन भाग के बल से ही करते हैं।

श्री अरविन्द का मत है कि व्यक्तित्व को उच्चतर बनाने हेतु अतिचेतन को चरितार्थ करना होता हैं और इस हेतु 'अभीप्सा' अर्थात् उन्नत होने ,विकसित होने की सतत गम्भीर अभिलाषा होनी चाहिये।

श्री अरविन्द ने 'चैत्य पुरूष' की सङ्कल्पना की है उनके अनुसार आत्मा और अन्तरात्मा में अन्तर है। आत्मा शुद्ध सत्तात्मक वस्तु है, अन्तरात्मा उसी का गत्यात्मक पक्ष है, यही 'चैत्य पुरूष' है। जो विकास को प्रेरित–प्रचलित करता है तथा स्वयं विकसनशील है। आत्मा की अपेक्षा व्यक्तित्व का यह तत्व अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मानवीय व्यक्तित्व को रूपान्तरित कर दिव्य बना सकता है। शुद्ध अभीप्सा द्वारा व्यक्ति अपने भौतिक,प्राणिक एवं मानसिक बन्धनों से धीरे–मुक्त होकर अपने अन्दर चैत्य पुरूष के सम्पर्क में आ जाता है। वास्तव मे चैत्य पुरूष का जागृत होना ही व्यक्तित्व की परिपक्वता का मार्ग है।

इसी प्रकार श्री अरविन्द भी पञ्चकोश विकास अर्थात् शरीर से आत्मा की ओर व्यक्तित्व के विकास मार्ग बताते हैं।

**चतुर्विध व्यक्तित्व–**

श्री अरविन्द ने व्यक्तित्व के चार प्रकारों का उल्लेख किया है–

- ज्ञान प्रधान व्यक्तित्व– इनमें मन,बुद्धि और ज्ञान सम्बन्धी क्षमताएँ अधिक मात्रा में होती है। इनमें यदि बौद्धिक व नैतिक साहस भी हो तो ये नए ज्ञान के स्रोतों को खोजने हेतु प्रेरित होते है।
- शक्ति प्रधान व्यक्तित्व– इसमें वह पौरूष पाया जाता है जिसके बल पर वह प्रशासन एवं व्यवस्था में परिपूर्णता लाता है। यदि इनमें ऐसी आत्मशक्ति भी हो जो शक्ति को दिव्य–पक्ष की ओर उन्मुख करें तो ये भागवत कार्य में सहायक होते हैं।
- उत्पादक वितरण सम्बन्धी क्षमता प्रधान व्यक्तित्व– ये लोग व्यापार में निपुण होते है तथा इनकी आत्मशक्ति यदि क्रियाशील होती है तो व्यापार में सजीवता व सृजनशीलता देखने को मिलती है।
- श्रम तथा सेवा प्रधान व्यक्तित्व– ऐसे व्यक्तियों में जब तक आत्मशक्ति उदित नहीं होती तब तक वे स्वयं को दास समझते हैं और आत्मशक्ति उत्पन्न होने पर आत्मगौरव व सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं।

श्री अरविन्द ने यह भी कहा है कि प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था इसी आधार पर रचित थी किन्तु कालान्तर में यह जन्म से सम्बद्ध हो गया । श्री अरविन्द ने माना कि ये चारों सक्रिय शक्तियॉ और प्रवृत्तियाँ न्यूनाधिक मात्रा में सभी में विद्यामान रहती है। कहीं प्रकट,कहीं प्रच्छन्न,कहीं विकसित तो कहीं दमित, अवसन्न और वशीभूत।

इस प्रकार श्री अरविन्द ने व्यक्तित्व के चतुर्विद्य प्रकारों को बताते हुए इस बात पर अधिक बल दिया है कि अभीप्सा या आत्मशक्ति द्वारा व्यक्तित्व का निरन्तर विकास करते हुए चैत्य पुरूष के जागरण की यात्रा आरम्भ की जा सकती है, और यही अभीष्ट है।

श्री अरविन्द ने व्यक्तित्व का निरूपण अपनी योग–साधना के आधार पर किया है। इनके अनुसार योग व्यावहारिक मनोविज्ञान है और मनोविज्ञान चेतना का विज्ञान है या अध्ययन है। निष्कर्षतः श्री अरविन्द के विचार वेद, उपनिषद् और गीता से प्रभावित हैं।[27]

---

27- उद्धृत – सीताराम जायसवाल, *'व्यक्तित्व का मनोविज्ञान,* आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन, 2008 पृ.क्र. 272–286

### 1.1.2.8 अन्य प्रसिद्ध आधुनिक भारतीय विचारकों के मतानुसार व्यक्तित्व अवधारणा :-

श्री अरविन्द के अतिरिक्त अन्य कई विचारक भारत में हुए हैं जिनके दर्शन ने शैक्षिक–वातावरण को प्रभावित किया है, तथा उनका अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय दर्शन और आध्यात्मिक पक्ष का प्रभाव उनके विचारों पर पूर्णतः परिलक्षित होता है; यथा स्वामी विवेकानन्द ने यह माना कि व्यक्ति में पूर्णता अन्तर्निहित है तथा शिक्षा उसी का विकास करने के लिए है। उनका कहना था कि ज्ञान प्राप्त करने और व्यक्तित्व विकास करने की एकमात्र विधि है, एकाग्रता और अनासक्ति की शक्ति का प्रयोग कर अन्तःसुप्त दैवत्व को जागृत करना। अर्थात् विवेकानन्द भी वेदान्त की ही पुनर्व्याख्या करते हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी मानव के सम्पूर्ण विकास पर चिन्तन किया। उनकी सबसे बड़ी दे नही भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के बीच उनका समन्वयवाद है। टैगोर ने व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास हेतु विश्व–भारती के आदर्शों में शिक्षा के लक्ष्यों में सम्मिलित किया कि "पश्चिमी विज्ञान का अध्ययन पूर्वी दृष्टिकोण से करना तथा सत्य का अनुसन्धान विभिन्न दृष्टिकोणों से करना, मानव की समग्रता का विकास करना, जिसके अन्तर्गत न केवल बौद्धिक विकास आता है, अपितु इन्द्रियों को संवेदनशील बनाना, भावनाओं का परिष्कार करना तथा नैतिक विकास करना भी अन्तर्निहित है।"[28] अर्थात् टैगोर भी बौद्धिक विकास से ऊपर इन्द्रियप्रशिक्षण तथा चारित्रिक विकास को महत्त्व देते हैं।

महात्मा गाँधी के चिन्तन का प्रभाव भारतीय शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर दृष्टिगोचर होता है। गाँधी ने शिक्षा की परिभाषा ही व्यक्तित्व विकास परिप्रेक्ष्य में दी है कि शिक्षा से उनका अभिप्राय बालक के शरीर, मन एवं आत्मा में पाए जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चतुर्मुखी विकास करना है। उन्होनें व्यक्तित्व विकास के सर्वोच्च शिखर पर ईश्वर और आत्मानुभूति के ज्ञान को प्रतिष्ठित किया।

डॉ. राधाकृष्णन् के जीवन पर विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा गाँधी का गहरा असर पड़ा अतः उनके शिक्षा–दर्शन पर इन महापुरूषों के विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। राधाकृष्णन् ने भी व्यक्तित्व को शरीर, मन मस्तिष्क तथा आत्मा का योग माना तथा उन्होने मानसिक व बौद्धिक शक्तियों के साथ आत्मिक शक्ति के विकास को महत्व दिया। उनका मानना था कि – "आजकल शिक्षा का जो रूप है, उससे आत्मिक उन्नति नहीं होती। यह हमारी भौतिक–पिपासा को शान्त करती है, सर्वाङ्गीण आवश्कताओं की पूर्ति नहीं करती। इसका सम्बन्ध भौतिकवादी दुनिया से अधिक है "मन के अन्तः प्रदेश से कम।"[29] डॉ. राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में निर्मित विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन में भी उल्लेख है कि "शिक्षा केवल मस्तिष्क का प्रशिक्षण नहीं, अपितु आत्मा का प्रशिक्षण भी है, इसका उद्देश्य ज्ञान और विवेक दोनो प्रदान करना है। अतः हम दोनों की व्यवस्था करें।"[30] अर्थात राधाकृष्णन् भी व्यक्तित्व विकास हेतु बौद्धिक के साथ–साथ आध्यात्मिक विकास पर बल देते हैं।

---

28- लक्ष्मीलाल के.ओड., *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि*, जयपुरः, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1973, पृ.क्र. 229
29- वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा, *विश्व के महान शिक्षाशास्त्री*, पटनाः, बिहार, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 1972, पृ.क्र. 778
30- –तथैव– पृ.क्र. 779

समकालीन विचारकों में जे.डी. कृष्णमूर्ति का भी यहाँ उल्लेख करना प्रासङ्गिक होगा। उनके विचार में शिक्षा का अर्थ है समग्र जीवन का विकास, जीवन की सम्पूर्णता। कृष्णमूर्ति के विचारों में यह स्पष्ट होता है कि वे भौतिक और ठोस वस्तुओं से ऊपर किसी अद्‌भुत और अदृश्य की निरन्तर जिज्ञासा और अन्वेषण को ही विकास मानते हैं। उन्होनें व्यक्तित्व के आत्मपक्ष को विशेष महत्व दिया है तथा आत्मानुभूति के बिना शिक्षा को अधूरा ही माना है। कृष्णमूर्ति ने भी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति को अन्तिम लक्ष्य नहीं माना अपितु उन्होनें इससे उत्पन्न होने वाली ईर्ष्यों, महत्वाकाङ्क्षा, लालच तथा द्वेष को व्यक्तित्व विकार कहा है। वे प्रेम, स्नेह, माधुर्य इत्यादि गुणों को विकसित व्यक्तित्व में सम्मिलित करते हैं तथा स्वयं से और प्रकृति से संवाद को व्यक्तित्व विकास की एक प्रक्रिया मानते हैं।

इस प्रकार भारतीय विचारकों की भी एक सुदीर्घ शृङ्खला है, जिसमें कुछ ने प्रत्यक्ष तो कुछ ने अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्तित्व और उसके विकास के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं यथा स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, विनोबा भावे, बालगंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपत राय, मानवेन्द्रनाथ रॉय, जाकिर हुसैन इत्यादि समस्त महानुभावों के विचारों को यहाँ प्रस्तुत करना अति विस्तार के कारण सम्भन नहीं है।

वस्तुतः वेदों से लेकर आज तक अजस्र रूप से प्रवाहमयी भारतीय विचारधारा का अनुशीलन किया जाय तो स्पष्ट होता है कि इसमें व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक भावनात्मक तथा आत्मिक सर्वविध पक्षों पर चिन्तन किया गया है तथा मानव के भौतिक, सामाजिक इत्यादि विकास को भी महत्त दिया है क्योंकि वह सफल सांसारिक जीवन हेतु वह आवश्यक है किन्तु इसे अन्तिम लक्ष्य नहीं माना है अपितु आध्यात्मिक उत्कर्ष और आत्मानुभूति को ही व्यक्तित्व विकास के सर्वोच्च ध्येय के रूप में स्वीकृत किया गया है।

## 1.1 योग क्या है

योग मूलतः संस्कृत भाषा का शब्द है। व्याकरणशास्त्र के अनुसार योग शब्द की व्युत्पत्ति 'युज्' संयमने, युजिर्योगे, 'युज्' समाधौ धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाकर हुई है जिसके मूलतः दो अर्थ निकलते हैं – आत्मा से परमात्मा का मेल अर्थात् अद्वैतानुभूमि तथा अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा चित्तवृत्ति निरोध पूर्वक अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित होने की प्रक्रिया।

सामान्य भाषा में 'योग' अर्थात् जुड़ना या सम्मिलन की प्रक्रिया। इस दृष्टिकोण से देखें तो यह विचारधारा दो तत्वों के मिलन की व्याख्या करती है वह चाहे आत्मा का परमात्मा से हो या साधक का साध्य से हो अथवा स्थूल शरीर का सूक्ष्म शरीर से हो। योग वह क्रिया है जिसमें मानव का मन बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और स्थूल शरीर अर्थात् सम्पूर्ण व्यक्तित्व किसी एक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु जुड़ जाते हैं, एकाकार हो जाते हैं। वस्तुतः योग एक जीवन–शैली या आचार पद्धति है जो शारीरिक से लेकर आत्मिक विकास को सम्भव बनाती है।

योग केवल शारीरिक–शिक्षा नहीं है और न केवल बौद्धिक–व्यायाम है अपितु आसन एवं प्राणायाम के द्वारा समस्त इन्द्रियों के नियन्त्रण और शारीरिक सन्तुलन के बाद एकाग्रता पूर्वक ध्यान और धारणा के द्वारा साध्य तक पहुँचने का मार्ग है।

योग के विभिनन स्वरूप गीता आदि विविध ग्रन्थों में मिलते हैं यथा ध्यान–योग, कर्मयोग, क्रियायोग, हठयोग, भक्तियोग इत्यादि। पतञ्जलि के अष्यङ्ग–योग–यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार धारणा, ध्यान तथा समाधि में ये सभी अन्तर्निहित हो जाते हैं यही राजयोग है जिसमें मानव अपने चित्त का स्वामी बन जाता है।

## 1.2 पातञ्जलयोगदर्शन का सामान्य परिचय

योगदर्शन भारतीय परम्परानुसार षड् आस्तिक दर्शनों में अन्यतम् है। इसके प्रतिष्ठापक मुनि पतञ्जलि हैं। जब सृष्टि हुई तब पृथ्वी पर मनुष्य ने जन्म लेने के पश्चात् अनुभूत किया कि जीवन बहुविध दुःखो से परिपूर्ण है और तब उसने इन दुःखों के निवारणार्थ उपायों को खोजना शुरू किया होगा। इसी श्रृङ्खला में मुनि पतञ्जलि ने भी शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक दुःखों की निवृत्ति हेतु तथा आनन्दस्वरूप की प्राप्ति के लिये योगसूत्रों का उपदेश किया।

यद्यपि वेदों, उपनिषदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में भी योग विषयक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं[31] याज्ञवल्क्यस्मृति के अनुसार हिरण्यगर्भ को योग के वक्ता के रूप में स्वीकार किया गया है, तथापि योगविद्या को अनुशासन के रूप में प्रस्तुत करने वाले आचार्य पतञ्जलि ही हैं अतः पातञ्जलयोग सूत्र ही योगदर्शन के आधार ग्रन्थ के रूप में आज प्रतिष्ठित है। विभिन्न प्रमाणों के आधार पर पातञ्जलयोगसूत्रों की रचना विक्रमपूर्व द्वितीय शतक में होना विद्वानों ने स्वीकार किया है।[32]

पातञ्जलयोगदर्शन में 195 सूत्रों का समावेश है जिन्हें चार पादों में विभक्त किया गया है – समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद तथा कैवल्यपाद। इनमें समाधि–पाद में समाधि के रूप तथा भेद, चित्त व उसकी वृत्तियों तथा ईश्वर आदि का वर्णन है। साधन–पाद में क्रिया योग, क्लेश उसके भेद, क्लेशों को दूर करने के उपाय, अष्टाङ्गयोग आदि वर्णित हैं विभूति–पाद में योगानुष्ठान से उत्पन्न होने वाली विभूतियों का तथा कैवल्यपाद में समाधि–सिद्धि तथा आत्मा की स्वरूप प्रतिष्ठा का वर्णन है।

योग दर्शन में व्यक्तित्व के स्वरूप की दृष्टि से चित्तभूमियों के आधार पर सामान्यतया पॉच प्रकार के व्यक्तित्व बताए गए हैं–

क्षिप्त अर्थात् चञ्चल एवं रजोगुण प्रधान व्यक्तित्व जो कि मदोद्भ्रान्त विषयी जनों का होता है। मूढ अर्थात् तमोगुण प्रधान विचार शून्य व्यक्तित्व। विक्षिप्त अर्थात् सत्वगुण प्रधान, धर्म–ज्ञान–वैराग्य–ऐश्वर्य सम्पन्न प्रायः स्थिरव्यक्तित्व। एकाग्रअर्थात् सत्वगुणप्रधान, कर्म– बन्धनों से विरत एकाग्र व्यक्तित्व तथा निरूद्ध अर्थात् पुरूष का शुद्ध चैतन्य स्वरूप, आत्मानुभूति की स्थिति को प्राप्त करने वाला व्यक्तित्व।

इसके अतिरिक्त भी व्यक्तित्व के कई गौण भेद पातञ्जलयोगदर्शन में निहित है जिनका विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया गया है। योगदर्शन के अनुसार चित्तवृत्तियों के निरोधपूर्वक अपने वास्तविक स्वरूप की अनुभूति करना ही व्यक्तित्व का विकास है।

योग दर्शन में न केवल मनुष्य के बाह्य व्यक्तित्व की शुद्धि व विकास के मार्ग बताए गए है। अपितु अन्तः करण के विकासार्थ,चित्तवृत्तियों के निरोध हेतू अष्टाङ्गयोग भी कहे गए हैं– यम अर्थात् अहिंसा, सत्य,अस्तेय,ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह। नियम अर्थात् शौच,सन्तोष,तप,स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान। आसन अर्थात् शरीर की स्थिरता व सुख हेतु पद्मासन, शीर्षासन आदि। प्राणायाम अर्थात् श्वास प्रश्वास की गति पर नियन्त्रण। प्रत्याहार अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से दूर करना। धारणा अर्थात् विषय विशेष में एकाग्रता। ध्यान अर्थात् ध्येयाकार चित्तवृति की एकाग्रता तथा समाधि अर्थात् ध्यान का ध्येय स्वरूप का प्रकाशक होते हुए अपने स्वरूप से शून्य हो जाना अर्थात् अपने वास्तविक स्परूप में स्थित हो जाना यही मोक्ष है।

सारांश रूप में योग दर्शन शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास को एक प्रक्रिया के रूप में विवेचित करने वाला ग्रन्थ है।

## 1.4 राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा २००५ एवं योग शिक्षा –

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा के विषय में चर्चा करते हुए स्पष्ट किया गया है कि –

"1940 के दशक में विद्यालयों के लिए विस्तृत स्वास्थ्य कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई गई थी जिसके छह प्रमुख घटक थे – स्वास्थ्य सेवा, स्वच्छ स्कूल, पर्यावरण, दोपहर का भोजन, स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा इत्यादि। ये घटक बच्चों के सर्वाङ्गीण विकास के लिए आवश्यक है और इनको पाठ्यचर्या में सम्मिलित किए जाने की आवश्यकता है। पाठ्यचर्या में योग हाल ही में जोड़ा गया है। इन सभी घटकों को सामूहिक रूप से विस्तृत स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा के रूप में पाठ्यचर्या में लिया जाना चाहिये न कि आज की तरह टुकड़ो–टुकडों में। पाठ्यचर्या के मुख्य अवयव के रूप में खेलों और योग के लिए जो समय निर्धारित है उसे किसी भी परिस्थिति में तो कम किया जाए न ही समाप्त किया जाय। स्वास्थ्य शिक्षा, शारीरिक शिक्षा और योग को उपयुक्त ढङ्ग से प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के सेवा– पूर्व शिक्षक – प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों से जोड़ा जाए। .....स्कूल में योग की शिक्षा के लिए उचित पाठ्यक्रम तथा शिक्षक–प्रशिक्षण की पद्धति अपनाई जाए।"[33]

---

31- "यस्माद्दते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगमिन्वति।।" – ऋग्वेद। 1.18.7, श्रीराम शर्मा आचार्य (सम्पादक) *ऋग्वेद संहिता,* मथुराः युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, 2010 पृ.क्र. 21

- "योगप्रवृतिं प्रथमां वदन्ति।" श्वेताश्वरतरोपनिषद् 2.13
- "न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।" श्वेताश्वतरोपनिषद् 2.12, हरिकृष्णदास गोयन्दका (व्याख्याकार), *ईशादिनौ उपनिषद्,* गोरखपुरः गीताप्रेस सं. 2038 पृ.क्र. 374–375

32- बलदेव उपाध्याय, *भारतीय दर्शन,* वाराणसीः, शारदा मन्दिर, 2001, पृ.क्र. 285

33- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* नईदिल्लीः राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् 2006 पृ.क्र. 64–65

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अन्तर्गत 'स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा' राष्ट्रीय फोकस समूह के 'आधार–पत्र' में 'स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा से सम्बन्धित पाठ्यक्रम की समीक्षा' शीर्षक में कहा गया है कि "शरीर और सञ्चालन की प्रक्रिया समझने के लिये उन महिला समूहों के अनुभव जिन्होंने शरीर और उसकी क्रियाओं को समझने के लिए विविध तरीकों का प्रयोग किया है इस क्षेत्र में पाठ्यक्रम तथा शिक्षा शास्त्र के विकास हेतु मार्गदर्शन का काम कर सकते हैं शरीर को विभिन्न ढङ्ग से समझने, बीमारियों की उत्पत्ति और उनका इलाज भी पाठ्यक्रम का हिस्सा हो सकते हैं। योग को शामिल करने से पाठ्यक्रम और समृद्ध होगा, जो शरीर को समझने, बीमारियों के कारण और उनके निदान के बारे में बताएगा। स्थानीय जड़ी–बूटियों और पौधों के उपयोग की समझ तथा उनका चिकित्सकीय मूल्य और कैसे लोग इनका इस्तेमाल एलौपेथिक दवाइयों के साथ कर सकते हैं, पाठ्यचर्या का महत्त्वपूर्ण हिस्सा होना चाहिये, यह एक महत्वपूर्ण तरीका है उन स्थानीय ज्ञान, विश्वासों तथा व्यवहारों को स्थान देने का जो बच्चे अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन में अनुभव करते हैं।

इस आधार पत्र में सिफारिशों के अन्तर्गत कहा गया है कि –

- इस क्षेत्र की अन्तर्विषयक प्रकृति देखते हुए ऐसे पाठ्यचर्या नियोजन की आवश्यकता है जिसमें इन सभी विषयों को स्थान मिले। इसे विज्ञान के साथ समाकलित करने की भी जरूरत है। प्राथमिक से उच्च माध्यमिक स्तरों तक सामाजिक विज्ञान भाषा तथा अन्य उपयोगी विषयों में इसके सैद्धान्तिक तथा आनुप्रायोगिक आयामों पर ध्यान दिया जाना चाहिये।

- फोकस ग्रुप द्वारा प्रस्तावित सैद्धान्तिक ढाँचे के तहत स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा और योग के लिए विभिन्न कॉलेजों, संस्थानों और विश्वविद्यालयों द्वारा प्रस्तावित अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम की पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा शिक्षाशास्त्र की समीक्षा की जानी चाहिये।

- सभी अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रमों में स्वास्थ्य योग और शारीरिक शिक्षा को अनिवार्य विषय के रूप में शामिल किया जाना चाहिये।

- स्कूल शिक्षा में इस विषय की स्थिति के लिए शोध अध्ययन कराए जाने चाहिये तथा इस क्षेत्र में वैकल्पिक अनुभवों को कलमबद्ध किया जाना चाहिये।[34]

---

34- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, *स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र* , नई दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, 2006, पृ.क्र. 17–18

## 1.5 अध्ययन की आवश्यकता –

भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में हमारे जीवन से जुड़ी अनेकानेक समस्याओं के बारे में समाधान या उनसे रक्षण के उपाय प्राप्त होते है। चाहे वह पर्यावरण की समस्या हो, मनोविकारों की बात हो, स्वास्थ्य हो या दैनन्दिन व्यवहार के आधार हो। भारतीय दर्शन का उद्देश्य ही जीवन की व्याख्या करना है अतः मानव व्यक्तित्व के विभिन्न स्वरूपों की चर्चा भारतीय दर्शन में होना स्वाभाविक है क्योंकि यह दर्शन मनोविनोद या बौद्धिक व्यायाम के लिए नहीं है अपितु यहाँ व्यवहार को भी उतना ही महत्व प्राप्त है जितना विचार को।

भारतीय मनोविज्ञान का विकास दर्शन के वैज्ञानिक स्वरूप के साथ अति प्राचीन काल से हुआ है। आधुनिक काल में भी शोधकत्ताओं ने शिक्षा और शिक्षा मनोविज्ञान से सम्बन्धित विभिन्न तत्वों को इन प्राचीन ग्रन्थों में खोजने का प्रयास किया है (शुक्ला 1982[35], शर्मा 1985[36], माथुर 1989[37]) भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में निहित मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से उपयोगी मान्यताएँ आधुनिक जगत् में भी प्रासङ्गिक हैं तथा तुलनात्मक अध्ययन सिद्ध करते हैं कि पश्चिमी व भारतीय मान्यताओं में सम्बन्ध भी निहित है(शङ्कर हरि 1991[38], सिंह विद्या 1992[39])।

व्यक्तित्व एक गूढ सङ्कल्पना होने के कारण सदा शोध हेतु प्रासङ्गिक रहा है। भारतीय प्राचीन ग्रन्थो गीता इत्यादि में व्यक्तित्व निर्माण तथा विकास प्रक्रिया का पर्याप्त विवेचन हुआ है (शर्मा 1990[40], श्रीवास्तव 2007[41])। पातञ्जल योगदर्शन ऐसी अमूल्य सम्पत्ति है जिसमें मानव के व्यक्तित्व विकास हेतु एक सम्पूर्ण प्रक्रिया विवेचित की गई है जिसे आधुनिक रूप में श्री अरविन्द ने भी प्रकाशित किया है। श्री अरविन्द के दर्शन पर अनेक शोध कार्य हुए है (सूरी 1983[42])। किन्तु योग के आधार पातञ्जलयोगसूत्र व्यक्तित्व अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में विवेचन से अछूते ही रहे हैं। गीता में सांख्य और योग दोनो दर्शनों के तत्व निहित है तथा गीता में निहित त्रिगुण अवधारणा का आधुनिक मनोविज्ञान से सम्बन्ध सिद्ध किया गया हैं (सन्धू 1990[43]) पतञ्जलि ने भी त्रिगुणों का विवेचन इसी परिप्रेक्ष्य में किया है अतः यह ग्रन्थ व्यक्तित्व अवधारणा विवेचन हेतु नितान्त उपादेय है।

आज भौतिक विकास की मृगतृष्णा में प्रायः हर व्यक्ति विभिन्न प्रकार के अवसाद, तनाव, चिन्ता, दुःख तथा कई मनोरोगों व शारीरिक विकारों से ग्रस्त है और यह अत्यन्त गर्व का विषय है कि आज न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी इन क्लेशों के निवारणार्थ योग को एक साधन के रूप में प्रतिष्ठित किया जा रहा है (लेनिथ 2009[44], ब्राउन एवं ग्रेवर्ग 2005[45], पी. सुन्दर 2010[46]) ।

---

35. S.c. Shukla (1982). Integertion of yogic phiolsohy and practices in the modern system of Indian Education. Ph.D. kim University. Abstract- ***III survey of research in education.***
36. R.P. Sharma, (1985) A critical Study of the nature and development of human Personality in ancient Indian thought.- Ph.D Education , Delhi University 1985, Abstract – ***IV Survey of Reserech in Education.***
37. suman Mathur (1989) Relvence of the educationl ideas of Atharva veda. Ph.D.Edu. Agra University . Abstract- ***IV survey of research in education.***
38. hari Shankar (1991), comparative study of philosophical and educational views of maharshi Aurobindo and Rousseau. . Abstract- ***IV survey of research in education.***
39. Vidya Singh (1992) A Comparative Study of idealism in education as perceived by plato and sri ma. Ph.D. Education, Agra university.
40. Adarsh Sharma (1990) Nature & devlopment of personality in the Bhagwad Geeta- Educational r velevance in the present society. ph. D – education – Kurukshetra university. Abstract- ***IV survey of research in education***
41. मयंक कुमार श्रीवास्तव (2007) पाश्चात्य तथा भारतीय मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की संकल्पना, शोध टिप्पणी / संवाद *परिप्रेक्ष्य,राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान,* नई दिल्ली वर्ष 14, अंक 3, दिसम्बर 2007
42. A.k. suri (1983), A Critical study of Integral yoga of Sri Aurbindo & its educational implications.. Ph.D. Education pondicherry University. Abstract- ***IV survey of research in education.***
43. sadhna Sandhu (1990), Construction of Triguna Personality Scale and its relationship to Eysenck's Personality Model. ph. D – psychology – punjab university. Abstract- ***IV survey of research in education.***
44. S. Lenith (2002). *A study of the affect of stress on society and how it can be managed through yog.; Yoga As a stress Management Tool,* ***Journal of Research Papers. 2*** (5) (Aug. 2002) 125-135
45. R. P. Brown and P.L. Grebarg (2005). Yogic Breathing in the Treatment of Stress Anxiety and Depression. ***The Journal of Alternative and complimentary medicine II*** . (Aug, 2005): 711-717
46. P. sunder,(2010) The Role of yoga in reduction of problems and bringing happiness in man's life. ***Asian journal of psychology and education, vol. 43,*** no. 3-4, 2010, page 2-4

विद्यालयों में छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर योग का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है (कुलदीप 1990[47], श्रीवास्तव एवं वर्मा 2001[48], सोनावाने 2007[49], वर्मा 2010[50]) इसीलिये राष्ट्रीय पाठ्यक्रम 2005 में योग को विद्यालयीन पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने की संस्तुति की गई है।

योग व्यक्तित्व का विकास करने में सक्षम है अतः उसका शैक्षिक महत्व तो स्पष्ट ही है यह एक ऐसी विद्या है जिसमें वाद–विवाद को कोई स्थान नहीं ही। किन्तु आज सामान्यतः जब भी व्यक्तित्व पर चर्चा होती है तो हम पश्चिमी विद्वानों ऑलपोर्ट, फ्रायड इत्यादि का ही नाम सुनते है। भारतीय व्यक्तित्व विचारधारा का परिचय सामान्यतया उपेक्षित सा ही दिखाई देता है। जबकि मुनि पतंजलि ने अपने दर्शन में व्यक्तित्व का जितना सूक्ष्म विवेचन किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है । **कोठारी शिक्षा आयोग**[51] (1964–66) – के प्रतिवेदन में शिक्षा और राष्ट्रीय लक्ष्य के विषय में बात करते हुए एक चुनौती और एक आस्था शीर्षक के अनतर्गत कहा है कि– "प्राचीन ऋषियों ने जीवन की मूलभूत समस्याओं के प्रति जो अन्तर्दृष्टि जो कि कुछ अर्थों में अद्वितीय तथा विश्व की घटनाओं से सम्बन्धित गहनतम अन्तर्दृष्टि का विशुद्ध सार है–प्राप्त की थी, उसकी फिर से अर्थ करना तथा उसे एक नए बोध स्तर पर प्रतिष्ठित करना हमारा ध्यये और दायित्व होना चाहिये।"

पश्चिमी विद्वानों ने अपने सर्वविध चिंतन को सिद्धांत का स्वरूप देकर उसे प्रकाशित किया है जबकि भारतीय मनीषियों ने ज्ञान की सतत प्रवाहमयी धारा में सूक्ष्म रूप से अनेक सिद्धांतों के बीज प्रदान कर दिये है जिनमें से कई बीजों का पल्लवन अभी शेष है। यह आधुनिक भारतीय पीढ़ी का उत्तरदायित्व है कि वह उन बीजों को खोज कर सहीं आधार भूमि में उनकी स्थापना कर उन्हें पुष्पित–पल्लवित करें। तथा उनकी व्याख्या कर उन्हें सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठित करें। आधुनिक मनोविज्ञान में भी अभी तक व्यक्तित्व का कोई सर्वमान्य सिद्धानत नहीं बन पाया है। व्यक्तित्व को बनाने और प्रभावित करने वाले नए–नए तत्त्वों की खोज हो रही है परामनोविज्ञान का विकास तथा अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष पर प्रयोग भी इसी के सूचक है। अब भावनात्मक या संवेगात्मक बुद्धि के आगे आध्यात्मिक बुद्धि पर भी प्रयोग किए जा रहे हैं अर्थात् आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी धीरे–धीरे इस बात को स्वीकार कर रहे हैं कि इस भौतिक जगत् के पीछे कोई आध्यात्मिक चेतन सत्ता है अतः इस आशा को पूर्ण करने का प्रयास भारतीयों को करना चाहिये कि भारतीय आध्यात्मिक मान्यताओं का समावेश कर एक सर्वाङ्गपूर्ण व्यक्तित्व–सिद्धान्त का विकास किया जा सकता है।

अतः व्यक्तित्व शिक्षण एवं अध्ययन का एक भारतीय आधार प्रस्तुत करने हेतु, व्यवहार में लाए जाने वाले योगासन प्राणायामादि का सैद्धान्तिक आधार प्रकाशित करने हेतु तथा पातञ्जलयोगसूत्रों में यत्र तत्र प्रसृत व्यक्तित्व–अवधारणा सम्बन्धी तत्वों को सङ्गहीत कर विवेचित करने हेतु प्रस्तुत शोध कार्य की सहज आवश्यकता शोधार्थी को अनुभूत हुई।

---

47- Kuldip,k (1990). Effects & Yoga on School Students. Abstract ***V survey of Educational research.***

48- S.S. Srivastava and D.P. verma (2001) Effect of Yoga Education on students; An Experimental study. ***Indian Journal of Educational Research*** (Mar 2005); 18 (2)

49- H.D Sonawane (2007). Impat of 6 weeks of yoga practices on level of anrity and mental health of elementry level students: A study. M-Ed. Dissertation- 2006-2007, RIE,Bhopal

50- V.B. Varma (2010) study of the effect of yogic practices on the level of anxiety ***APRC. Agra , Indian psychological ReviewVol. 74*** (2), Year june 2010,

51- भारत सरकार, *शिक्षा आयोग की रिपोर्ट* (1964–66) नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, 1968, पृ.क्र. 25–26

## 1.6 शोध कार्य का शीर्षक –

*पातञ्जलयोगदर्शन में व्यक्तित्व की अवधारणा*

## 1.7 प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली –

**पातञ्जलयोगदर्शन** का सामान्य तात्पर्य महर्षि पतञ्जलि विरचित 195 योग सूत्रों में निहित दर्शन से है जो कि चार पादों – समाधि पाद, साधन पाद, विभूति पाद तथा कैवल्य पाद में विभक्त है । उपर्युक्त शोध कार्य में **पातञ्जलयोगदर्शन** का यही अर्थ अभीष्ट है ।

**"व्यक्तित्व"** से सामान्य तात्पर्य व्यक्ति के समस्त व्यवहार और विचारों के संगठन से होता है। पश्चिमी विद्वानों ने व्यक्तित्व की सैकड़ों परिभाषाएँ दी हैं यथा प्रसिध्द मनोविज्ञानी ऑलपोर्ट के अनुसार –

"Personality is the dynanic organization within the individual of those Psychophysical systems that determine his unique adjustment to his enviroment" (1937).[52]

**श्री अरविन्द** ने प्राचीन औपनिषदिक पंचकोशों की अवधारणा को आधुनिक रुप देते हुए कहा कि "व्यक्तित्व भौतिक, प्राणिक, मानसिक, आध्यात्मिक और चैत्य सोपानों का सम्मिलित रुप है।"[53]

उक्त शोध–कार्य में "व्यक्तित्व" से तात्पर्य शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक व्यवहार के समग्र सङ्गठन से है।

D-364

## 1.8 शोध कार्य के उद्देश्य –

1. पातञ्जलयोगदर्शन में से उन सूत्रों का चयन करना जिनमें व्यक्तित्व की अवधारणा है।
2. चयनित सूत्रों में व्यक्तित्व के निर्धारक तत्वों का विश्लेषण कर उनकी विवेचना करना ।
3. पातञ्जलयोग दर्शन के अनुसार व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण करना।
4. पातञ्जलयोग दर्शन के अनुसार व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट करना।

Regional Institute of Education LIBRARY Bhopal

## 1.9 शोध प्रश्न –

1. क्या पातञ्जलयोग दर्शन में व्यक्तित्व मीमांसा निहित है ?
2. क्या पातञ्जलयोग दर्शन में व्यक्तित्व के निर्धारक तत्वों का विवेचन किया गया है। ?
3. पातञ्जलयोग दर्शन में व्यक्तित्व के कितने प्रकार बताए गए है ?
4. पातञ्जलयोग दर्शन में व्यक्तित्व विकास की क्या प्रक्रिया बताई गई है ?

## 1.10 शोध की परिसीमा –

उक्त शोध–कार्य की परिसीमा यह है कि इसमें पातञ्जलयोग दर्शन में से केवल व्यक्तित्व की अवधारणा का ही अध्ययन किया गया है।

---

52- उद्धृत – डी.एन. श्रीवास्तव, *व्यक्तित्व का मनोविज्ञान*, आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन, 2008, पृ.क्र. 4
53- उद्धृत – सीताराम जायसवाल, *व्यक्तित्व का मनोविज्ञान*, आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन, 2008, पृ.क्र. 272